आधुनिक भारत की निर्मिति में नवजागरण की भूमिका

डॉ. मनोज पाण्डेय, एसोसिएट

19वीं सदी भारत के नवनिर्माण की सदी है। इस सदी में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक हर दृष्टि से आधुनिक भारत की निर्मिति का सिलसिला प्रारंभ होता है। भारतीय मानस पुर्नजागृत होता है। आधुनिक भारतीय भाषाओं का प्रणयन होता है। अपने जातीय गौरव बोध की स्मृति पुनर्जागृत होती है। अपने समाज की विभिन्न विसंगतियों की तरफ न सिर्फ दृष्टि जाती है बल्कि उनके निदान के उपाय ढूॅंढने की आकांक्षा भी बलवती होती है। इसकी एक बड़ी वजह यह भी है कि देश पराधीन था। औपनिवेशिक शासन की दुर्नीतियों के कारण समग्र भारतीय समाज त्रस्त था। जिस प्रकार मध्यकाल में मुगलों के आधिपत्य के बाद भारतीय जनमानस व्यथित था, उस दौर में लोक को संबल प्रदान करने के लिए संतों भक्तों ने ईश्वराधना को एक माध्यम के तौर प्रस्तुत किया था जो अखिल भारतीय स्तर पर लोकजागृति का वाहक बना। उसी प्रकार इस दौर में नवजागरण आधुनिक चेतना का वाहक बनता है। यह भी उल्लेखनीय है कि जिस तरह मध्यकालीन लोकजागरण को वैदिक काल के बाद भारतीय समाज की एक बड़ी घटना माना जाता है, उसी तरह नवजागरण आधुनिक दौर की एक बड़ी घटना है।

गौरतलब है कि भारतीय नवजागरण यूरोपीय रिनेसां की भाॅंति उद्भूत नहीं हुआ था। रिनेसां के कारण और परिस्थितियां भिन्न थी, भारतीय नवजागरण की भिन्न। यह भी सच है कि भारतीय नवजागरण का अखिल भारतीय स्वरूप प्रारंभ में दृष्टिगत नहीं होता। क्षेत्रवार उसके मुद्दे और संदर्भ भिन्न थे।लेकिन कालांतर में 19वीं सदी के अंतिम दशकों तक इसकी अखिल भारतीय ध्वनि सुनाई पड़ने लगती है। चूॅंकि समस्त भारतवर्ष औपनिवेशिक शासन के अधीन था, उनके अन्याय, अत्याचार से त्रस्त था, इसलिए देर -सबेर सभी का एक-सा स्वर सुनाई देता है। औपनिवेशिक शासन की प्रतिक्रिया में देश संगठित होता है, उसे एक राष्ट्रीय मकसद मिलता है। यह समझ पूरे भारतीय मानस की बनती है कि औपनिवेशिक सत्ता से मुक्त हुए बिना कल्याण नहीं हो सकता । यही वजह है कि नवजागरण राष्ट्रीय जागरण बनता है और आगे चलकर राष्ट्रीय एकता और एकात्मता का आधार। बुद्धिवाद, तर्कशीलता , आलोचनात्मक विवेक, अपने अतीत की गौरवशाली परंपरा पर गर्वबोध न कि अंधानुकरण, धार्मिक -सामाजिक रूढ़ियों -पाखंडों के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण आदि भारतीय नवजागरण की विशिष्टताएं हैं । आधुनिक भारत का रूपाकार इसी नवजागरणकालीन चेतना से निर्मित है।

भारतीय नवजागरण के स्वरूप - विकास पर चर्चा में यह प्रश्न उठता रहा है कि इसकी मुख्य प्रेरणा क्या है? क्या यह पश्चिमी रिनेसां का प्रभाव है? औपनिवेशिक शासन की देन है या भारतीय परिस्थितियों की स्वाभाविक उपज? अतीत का गौरवगान है, हिंदू पुनरुत्थानवाद है याकि भारतीय चिंताधारा का स्वाभाविक विकास? इन प्रश्नों पर नवजागरण के अध्येता टकराते रहे हैं। इन पर पक्ष-विपक्ष में तमाम ऐतिहासिक साक्ष्यों के हवाले से अनेक तर्क- वितर्क उठे - उठाए गए हैं।

पश्चिमी रिनेसां और औपनिवेशिक शासन को नवजागरण की प्रेरणा मानने वाले विचारक अंग्रेजी औद्योगिक नीति को इसकी मूल वजह मानते हैं। उनके लेखे औपनिवेशिक आधुनिकता नवजागरण की मुख्य प्रेरणा है। ऐसे लोग भारतीय परिस्थितियों की अनदेखी करते हैं। उन्हें भारतीय समाज पिछड़ा और रूढ़िवादी नजर आता है। उनकी दृष्टि में भारतीय मानस में सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक दूरियां इतनी विशाल थीं कि उसमें ऐसी चेतना का प्रणयन असंभव है। चूॅंकि यूरोप में यह आत्ममुग्धता सदैव विद्यमान रही है कि यूरोपीय सभ्यता ही मानव सभ्यता का शीर्ष है, इसलिए सभ्यता के विकास का कोई भी चरण यूरोपीय मॉडल में देखने की ललक और सामान्य समझ सर्वत्र रही है। डॉ. शंभुनाथ ठीक कहते हैं "कहने की जरूरत नहीं कि नव जागरण के पश्चिमी मॉडल को सार्वभौम मान लेने की वजह से भारत जैसे गैर यूरोपीय देश में आए नवजागरण को सही परिप्रेक्ष्य में देखा नहीं जाता। कई बार इसे हीन कहते हुए उतना ही सारवान बताया जाता है, जितना उसका मेल पश्चिमी शिक्षा, जीवन - शैली और विचारधाराओं से है।"[1] वे सही कहते हैं कि ऐसी समझ ब्रिटिश

उपनिवेशवाद की नीतियों की ठीक समझ न बनने की वजह से बनती है। ऐसे विचारक यूरोप- ब्रिटिश सत्ता को कल्याणकारी मानते हुए देवतुल्य देखते हैं।

नवजागरण पर विचार करते हुए प्रायः अंग्रेजों की सकारात्मक भूमिका की चर्चा की जाती है। यह माना गया है कि भारत में अंग्रेजों के आगमन से ही आधुनिकता की शुरूआत हुई। प्रख्यात समाजशास्त्री डा० ए० आर० देसाई का मानना है कि 'भारत में राष्ट्रीयता के विकास की प्रक्रिया बड़ी जटिल और बहुरंगी है। उसके अनेक कारण हैं। अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारत की सामाजिक संरचना कई अर्थों में अद्वितीय थी। यहां की अर्थव्यवस्था का आधार यूरोपियन देशों के मध्ययुगीन प्राक् पूॅंजीवादी समाजों से भिन्न था।"[2] एशियाटिक सोसायटी के संस्थापक सर विलियम जोन्स का हवाला देते हुए डा. रामविलास शर्मा ने भी स्पष्ट लिखा है कि 'भारत में नवजागरण अंग्रेजी राज के बिना संभव था।' अर्थात नवजागरण की चेतना अंत:सूत्र भारतीय समाज में विद्यमान थे। मुगलों और अंग्रेजों के आक्रमण और लूट-खसोट के बावजूद भारतीय स्वत्व अविजित था। तथाकथित सामाजिक -धार्मिक कुरीतियों के बावजूद देश समृद्ध था, समाज परतंत्र नहीं था। राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक हर प्रकार की चेतना भारतीय जनजीवन में थी। विलियम जोन्स के हवाले से डा. शर्मा बताते हैं "भारत के बारे में उन्होंने कहा था कि इस देश में अनेक बार परिवर्तन हुए हैं। बाहर के लोगों ने आकर इसे जीता है। फिर भी यहाँ सम्पदा के स्रोत अब भी बहुत बड़े हैं। कपास की चीजें बनाने में वे अब भी सारी दुनिया से बड़े हैं। "Their resources of wealth are still abundant even after so many revolutions and conquests; in their manufactures of cotton they still surpass all the world.''[3] जाहिर है अंग्रेजों के आने के पूर्व भारतवर्ष में यह संभव था। यहां काफी पहले से समुद्री यातायात के साधनों का विकास हो चुका था, जिसके द्वारा पूरी दुनिया से भारत के व्यापारिक संबंध बने थे। १८वीं सदी में उसी व्यापार को आधार बनाकर अंग्रेजी लुटेरे व्यापारियों ने, फिर वहां की सत्ता ने भारत को लूटा। धन-धान्य, संस्कृति, कला, विज्ञान-दृष्टि सम्पन्न भारत को औपनिवेशिक शासन ने तबाह कर दिया, उसी की प्रतिक्रिया है नवजागरण !

भारतीय नवजागरण में 1857 के महा विद्रोह की घटना का भी विशेष महत्व है। जिन क्षेत्रों में 1857 का सीधा असर न था, वहां उसके बाद क्षेत्रीय स्तर पर अनेक विद्रोह हुए। ऐसे विद्रोह मुख्यतः बंगाल और आसाम में हुए, उनमें बंगाल के निलहों का विद्रोह, और पंजाब में कूका विद्रोह प्रसिद्ध है। इसलिए यह स्वतः सिद्ध है कि यह नवजागरण यूरोप की प्रेरणा या देन न होकर अपनी आंतरिक परिस्थितियों की उपज था। जिसके मूल में कम्पनी शासन की लूटपाट और आर्थिक शोषण वाली नीति थी। इसके साथ ही एक बात और महत्वपूर्ण है कि लगभग इसी समय एशिया के सभी देश नई करवट बदल रहे थे। इसलिए भारतीय नवजागरण को एशियाई नवजागरण का अंग कहना ज्यादा समीचीन है। भारत के साथ-साथ संपूर्ण एशिया में नवजागरण की भावना दिखाई देती है। १९०५ में 'सरस्वती' में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने एशियाई देश जापान को प्रेरणा स्रोत बताते हुए लिखा है - "जापानियों के बराबर देशभक्त और कोई पृथ्वी की पीठ पर नहीं है। देशभक्ति से प्रेरित होकर विद्या और विज्ञान के बल पर वे असम्भव को सम्भव कर दिखाते हैं। जापान भी एशिया में है। हिन्दुस्तान भी एशिया में है। अधिकांश जापानी बौद्ध हैं और बौद्ध मत के प्रवर्त्तक की जन्मभूमि हिन्दुस्तान ही है। ……..परन्तु दोनों में असमानता भी है। जापानी स्वाधीन हैं, हिन्दुस्तानी पराधीन। जापानी देशभक्त हैं, हिन्दुस्तानी देशभक्त नहीं। जापान में एकता है, हिन्दुस्तान में एकता का अभाव है। वैज्ञानिक शिक्षा के लिए सात समुद्र पारकर जाना जापानी लोग अपने और अपने देश के लिए गौरव समझते हैं; पर समुद्र पारकर जाना हिन्दुस्तानियों के लिए पाप है, क्योंकि उनका धर्म जाता रहता है। जापान में जाति-भेद का बहुत ही कम विचार है; हिन्दुस्तान में जाति-भेद का सबसे अधिक विचार है। जापान में सब लोग परस्पर शादी विवाह करते हैं, हिन्दुस्तान में अपने वर्ग में भी शादी करने में अनेक झंझट पैदा होते हैं। जापान में छुआछूत नहीं; हिन्दुस्तान में इसकी परा-काष्टा है। ये बातें विचार करने लायक हैं। पर विचार करने वालों ही की यहाँ कमी है। विचार करे कौन ?"[4]

भारतीय नवजागरण को पुनरुत्थानवादी दृष्टि से भी देखा गया है। नवजागरण के कुछ अध्येता इसे हिन्दूवादी चश्मे से देखते हैं। जबकि वास्तव में भारतीय नवजागरण में दिखने वाला पुनरुत्थानवादी रुझान उपनिवेशवाद-विरोध का एक हिस्सा था। वह नवजागरण का एक साधन था, लक्ष्य नहीं। यह ठीक है कि भारतीय नवजागरण के अग्रदूत किसी न किसी रूप में प्राचीन अतीत की तरफ देखते हैं लेकिन न तो उनका लक्ष्य अतीत का गुणगान करना है, न ही उनकी दृष्टि अतीत में बिंधी रह जाती है। कहना चाहूॅंगा कि वे 'फंडामेंटलिस्ट' नहीं थे, उनके समक्ष देश का वर्तमान था। उनकी चिंता देश को वर्तमान परिस्थितियों से निकालने की थी। किन्तु वर्तमान से भविष्य का मार्ग इतना धुंधला दिखाई पड़ रहा था कि अतीत की चमकदार रोशनी की दरकार उन्हें पड़ी। यह स्वाभाविक था।दूसरे, उनकी पुनरुत्थान-चेतना धर्म के उच्च आशय से जुड़ने की थी, धार्मिक कूपमंडूकता की नहीं। राजा राममोहन राय, महादेव गोविंद रानाडे, विवेकानंद, श्री अरविन्द जैसे विचारकों के विचारों में यह देखा जा सकता है। उनकी पुनरुत्थान-चेतना में एक खुलापन था, अतीत का अंध गुणगान नहीं। यह भी है कि तत्कालीन परिस्थितियों में धर्म एक ऐसा आश्रय था, जिससे परहेज नहीं किया जा सकता था। भारतीय जनता धर्मपरायण है। अतः धर्म उसकी जीवनशैली का हिस्सा है, बल्कि कहना तो यह चाहिए उसकी जीवनशैली का प्रेरक और निर्धारक है। इसलिए नवजागरणकाल में समाज सुधारक यदि धर्म का सहारा लेते हैं तो वह स्वाभाविक है।

यह भी गौरतलब है कि अतीत की तरफ दृष्टि जाते हुए भी भारतीय नवजागरण की प्रेरणा भक्तिकाल के प्रणेता नहीं हैं बल्कि भक्ति आंदोलन की वे विशेषताएं हैं जिनका पुनरान्वेषण आधुनिक विचारक करते हैं, यथा धार्मिक रूढ़ियां, पाखंड, ऊँच-नीच, छुआ-छूत जैसी विकृतियां, प्रेम, सौहार्द, सदाशयता,आत्म-विवेक, सदाचार और सत्य जैसे मूल्य। इस दौर की मुख्य प्रेरणा समाज सुधार है। इसमें सामुहिक जिम्मेदारी का एहसास है।ब्रह्म समाज, सत्यशोधक समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, वेद समाज, थियोसोफिकल सोसाइटी जैसे संगठन भारतीय नवजागरण की विवेक-बुद्धि के परिचायक हैं। आधुनिक भारत की निर्मिति में इनकी योगकारी भूमिका है ।

नि:संदेह भारत में नवजागरण का उदय पूरब में बंगाल से होता है। बंगाल से प्रारंभ होकर यह महाराष्ट्र, गुजरात, उड़ीसा, आसाम, हिन्दी-उर्दू भाषी विस्तृत क्षेत्र, तथा तेलुगू, कन्नड़, मलयालम भाषी स्थानों में फैला। भारतीय नवजागरण को मोटे तौर पर चार भागों में बाॅंटकर देखा जाता है -बंगाल का नवजागरण, महाराष्ट्र का नवजागरण, दक्षिण भारत का नवजागरण और हिन्दी प्रदेश का नवजागरण। इसमें भी कोई संदेह नहीं कि सभी क्षेत्रों में नवजागरण के उदय के अपने कारण रहे । सांस्कृतिक संबद्धता के बावजूद प्रारंभिक दौर में नवजागरण की भूमियां अलग-अलग दिखती हैं। लेकिन चेतना कमोवेश एक-सी लगती है।

नवजागरण का जनक राजा राम मोहन राय को माना जाता है। उन्होंने सामाजिक क्षेत्र में सती प्रथा, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, अस्पृश्यता आदि घातक और अनिष्टकारी कुरीतियों का विरोध किया। इसके साथ धार्मिक, सांस्कृतिक सुधार की आवाज उठी। राष्ट्रीयता की भावना बलवती हुई। राष्ट्रीय भाषा की अपेक्षा व्यक्त की गई। केशव चन्द्र सेन, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, स्वामी विवेकानन्द, बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय, रवीन्द्रनाथ टैगोर आदि बांग्ला नवजागरण के प्रणेता के रूप में प्रतिष्ठित हुए। राजा राम मोहन राय ब्रिटिश राज्य के समर्थक कहे जाते हैं, किन्तु उनके विचार इस बात की तरफ भी संकेत करते हैं कि देश को लेकर उनकी सोच कैसी थी। उनके शब्द हैं -"यह बात सभी लोग जानते हैं की तानाशाह सरकारें स्वभावत: चाहती हैं कि बात करने की आजादी को दबा दिया जाए क्योंकि इस आजादी से उनके कारनामे लोगों की निगाह के सामने आते हैं और लोग उनकी निंदा करते हैं। और इस तरह के कारनामे तो अत्याचार और उत्पीड़न के साथ बराबर रहते ही हैं। जिस दलील का वे हमेशा सहारा लेते हैं, वह यह है कि ज्ञान का प्रसार खतरनाक है और इससे जो कानूनी सत्ता बनी हुई है, उसके लिए संकट पैदा हो जाएगा। कारण यह है कि लोग जब ज्ञान का प्रकाश देखेंगे तो उन्हें पता चलेगा कि अपने एक साथ प्रयत्न करने से वे थोड़े से आदमियों का जुआ फेंक सकते हैं और इस तरह सत्ता के भार से पूरी तरह मुक्त हो सकते हैं।"[5]

महाराष्ट्र में नवजागरण यूं तो बंगाल के रास्ते ही आया, किन्तु इसका स्वरूप उससे कुछ स्तर पर भिन्न दिखाई देता है। यद्यपि कलकत्ता (बंगाल)की तरह मुंबई (महाराष्ट्र) भी व्यापारिक केंद्र था। महादेव गोविंद रानाडे के प्रयासों से महाराष्ट्र में नवजागरण खड़ा होता है, जिसके एक महत्वपूर्ण आधार बनते हैं महात्मा ज्योतिबा फुले। बेशक, महाराष्ट्र की सामाजिक परिस्थितियां उन्हें सुधार हेतु आमंत्रित कर रही थी। महात्मा फुले को दलित चेतना का मसीहा कहा जाता है। उन्होंने दलित समाज की पीड़ा को अभिव्यक्त करते हुए उन्हें मनुष्य का, बराबरी का दर्जा देने की मांग की। महाराष्ट्र का दलित स्वर देश के अन्य हिस्सों में भी सुनाई पड़ता है। पुरुष ही नहीं, स्त्रियां भी इस सुधार आंदोलन की भागीदार बनती हैं। इनमें सावित्रीबाई फुले, पंडिता रमाबाई, ताराबाई शिंदे का नाम अग्रगण्य है। 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' के उद्घोषक बाल गंगाधर तिलक, आगरकर आदि नवजागरण की महत्वपूर्ण उपलब्धि 'राष्ट्रीय चेतना' के संवाहक बनते हैं।

दक्षिण भारत में नवजागरण के वाहक बनते हैं रामास्वामी पेरियार और नारायण गुरु। रामास्वामी पेरियार ने दक्षिण भारत में धार्मिक,सामाजिक, सांस्कृतिक परिष्कार का वीणा उठाया। उन्होंने धर्म और जाति के भेद पर प्रहार करते हुए मानव धर्म की प्रतिष्ठा पर बल दिया। पेरियार नास्तिक थे। वे किसी धर्म को नहीं मानते थे। उन्होंने कहा "तथाकथित महान धर्मों ने मनुष्य जाति का किसी भी रूप में भला नहीं किया है। इन धर्मों से आम लोगों के साथ धोखा और दुर्व्यवहार करनेवाले पंडितों, पुरोहितों, धनवानों और सरकारों को ही मदद मिली है। इसके अलावा, हम पाते हैं कि धर्म आदमी की बुद्धि को ही दूषित कर देता है। ... धर्म मनुष्य के सोचने की शक्ति को हो कुंद कर देता है। यह लोगों को मिलाने की जगह एक-दूसरे से पृथक करने में सहायक सिद्ध होता है। यह मुनष्य के चरित्र और आंतरिक विकास पर बल न देकर बाह्याडंबर से ही तुष्टि दे देता है।"[6] कहना न होगा, धर्म - सुधार भारतीय नवजागरण का एक प्रमुख एजेंडा था। नारायण गुरु ने भी जाति-धर्म की पुरानी परिपाटी को स्वस्थ समाज के लिए कोढ़ बताते हुए,उसका जमकर विरोध किया। ये विचारक नवीन बुद्धिवादी चेतना से सम्पन्न थे।

हिन्दी नवजागरण के उदय में १८५७ की केंद्रीय भूमिका है। वृहद हिन्दी समाज भी औपनिवेशिक शासकों की बर्बरता के साथ अनेक प्रकार की विसंगतियों का शिकार था। यद्यपि मध्यकालीन लोकजागरण की जमीन तैयार करने में हिन्दी क्षेत्र के संतों-भक्तों की अतुलनीय भूमिका रही। किन्तु दुर्भाग्यवश इस क्षेत्र में नवजागरणकालीन चेतना का संवाहक कोई समाज सुधारक नहीं बनता है। इस कार्य को हिन्दी क्षेत्र के लेखकों ने सम्पन्न किया। चाहे औपनिवेशिक शासन का विरोध हो, सामाजिक कुरीतियों का प्रतिकार हो, लेखकों ने अपने पूर्व की परंपरा से ऊर्जा ग्रहण करते हुए क्रांतिकारी कार्य किया।

इसके बावजूद यह कहा जा सकता है कि हिन्दी नवजागरण एक तरह से संपूर्ण भारत का नवजागरण बना। १८५७ की चिंगारी पूरे देश में फैली। उपनिवेशवाद विरोध का स्वर तीव्र हुआ। राष्ट्रीय स्वाधीनता की गूॅंज उठने लगी। साहित्येतिहासकारों का मानना है- "ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी का नवोत्थान आंदोलन उस व्यापक भारतीय आंदोलन का एक भाग था जो अंत में स्वयं उस महान ऐतिहासिक क्रम का एक प्रमुख भाग था जो 19वीं शताब्दी के आरंभ से ही एंग्लो - सैक्सन सभ्यता के संपर्क द्वारा मिस्र, तुर्की, अरबी, ईरान, इराक, अफगानिस्तान,चीन , जापान, जावा, सुमात्रा, मलयद्वीप आदि समस्त पूर्वी संसार को स्पंदित कर रहा था।"[7] डॉ. रामविलास शर्मा ने 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण' में इसकी विशेषताएं बताते हुए लिखते हैं "हिन्दी प्रदेश में नवजागरण १८५७ ई० के स्वाधीनता संग्राम से शुरू होता है। इस स्वाधीनता संग्राम की पहली विशेषता यह है कि यह सारे देश की एकता को ध्यान में रखकर चलाया गया था। राष्ट्रीय एकता का यह उद्देश्य भारतीय सेना के नेताओं ने अपने सामने रखा था, सामन्तों ने नहीं।"[8]

भारतेंदु ने 'भारत दुर्दशा' नाटक में बीस कोटि भारतवासियों को याद करते हुए पूरे देश की दुर्दशा का चित्र उपस्थित किया है। उनका दृष्टिकोण अखिल भारतीय था। 26 जनवरी, 1874 की 'कविवचन सुधा में भारतेंदु अंग्रेजी राज की दुर्नीति पर कटाक्ष करते हुए लिखते हैं- "क्या यह अनीति नहीं है कि उन्होने हमारे धनधान्य की वृद्धि में कोई उपाय नहीं किया और केवल अपनी भाषा सिखाया और सब व्यापार

और धन सब अपने हस्तगत किया। क्या यह खेद की बात नहीं कि हमको कला कौशल से विमुख रखा और स्वतः व्यापारी बनकर सब देश भर का धन और धान्य अपने देश में ले गये।"[9] हिन्दी क्षेत्र के नवजागरण की मूल उपलब्धि यही है कि इसने राष्ट्रीय,जातीय चेतना का प्रचार किया,जिसने पूरे देश को स्वाधीनता का मंत्र दिया।

इस तरह भारतीय नवजागरण का राष्ट्रीय स्वरूप पूरे देश के नवजागरण को दृष्टिगत रखते हुए स्पष्ट होता है। भिन्न परिस्थितियों और भिन्न स्वरों के बावजूद उसकी अंतर्लय को अनुभव किया जा सकता है। समग्र भारतीय समाज की भूमिका को देखा जा सकता है। नवजागरण की उपलब्धियां यथा- राष्ट्रीय - जातीय चेतना का विकास,आलोचनात्मक विवेक -बुद्धि का विकास,सामाजिक विसंगतियों पर प्रहार और सुधार, सांस्कृतिक -धार्मिक रुढ़ियों - परम्पराओं के प्रति आधुनिक दृष्टिकोण, आर्थिक स्थितियों का यथार्थ - बोध,प्राचीन व नवीन का समन्वय करने की प्रवृत्ति,परम्परा और संस्कृति के गतिशील पक्षों की परख-पहचान,मानव - धर्म की प्रतिष्ठा आदि आधुनिक भारत की निर्मिति में दिशा-दर्शक तत्व बनते हैं।

सारत:, आधुनिक भारत की निर्मिति नवजागरणकालीन चेतना का परिणाम है। नवजागरण की चेतना में भारतवर्ष को न सिर्फ गुलामी से मुक्ति की आकांक्षा निहित थी, राष्ट्रीय चेतना का भाव निहित था बल्कि उसे आधुनिक बनाने की परिकल्पना भी। नवजागरण के अग्रदूतों ने आधुनिकता की बुनियादी विशेषता विवेक सम्मत चिंतन दृष्टि का विकास किया।

संदर्भ:

1. शंभुनाथ, भारतीय नवजागरण: एक असमाप्य सफर, पृ. 24-25
2. ए.आर. देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, द मैकमिलन, जयपुर, प्रथम संस्करण, पृ. 4
3. रामविलास शर्मा, भारतीय साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2014, पृ.227 से उद्धृत
4. रामविलास शर्मा, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1977, पृ. 53
5. The English Works of Raja Rammohan Rai, Sadharan Brahmo Samaj, Calcutta, Reprint 1995, P. 459
6. शंभुनाथ,भारतीय नवजागरण: एक असमाप्य सफर, वाणी प्रकाशन, दिल्ली,2022, पृ.459 से
7. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, भारतेंदु की विचारधारा, प्रयाग, १९४८, पृ. १५७
8. रामविलास शर्मा,महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1977, पृ. **9**
9. भारतेंदु , कविवचन सुधा, 26 जनवरी, 1874

@ हिन्दी विभाग, रा। तु म नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर -440033

मो -9595239781

mkprtmnu@gmail.com